खंड: 4, अंक: 12 दिसंबर 2021

संश्लेषण

सी जी एस मासिक पत्रिका

सामाजिक उत्थान एवं संवैधानिक प्रावधान: नीति बनाम राजनीति

सी जी एस

वैश्विक अध्ययन केंद्र

दिल्ली विश्वविद्यालय

संपादक

प्रो सुनील कुमार चौधरी

संपादकीय मण्डल

डॉ रमेश भारद्वाज
डॉ संध्या वर्मा
डॉ महेश कौशिक

डॉ अभिषेक नाथ
डॉ आशीष कुमार शुक्ल
राम किशोर

रूपांकन:काजल

© सी जी एस, 2022

संश्लेषण

सामाजिक उत्थान एवं संवैधानिक प्रावधान: नीति बनाम राजनीति

अनुक्रमिका

संपादकीय

1 सामाजिक उत्थान की चुनावी रणनीति: अनुसूचित जाति/जनजाति के राजनीतिक उत्थान का अवलोकन 4–8

– सुशांत यादव

2 सशक्त, सक्षम व सुदृढ़ समाज का आधार महिलाएं – सृष्टि 9–13

3 दलितों के विरुद्ध सामाजिक अपराध में राजनीतिक अवसरवादिता 14–18

– राजेन्द्र कुमार

4 सामाजिक उत्थान की चुनावी रणनीतिः उत्तर प्रदेश में अन्य पिछड़ा वर्ग के राजनीतिक उत्थान का अवलोकन 19–23

– निशांत यादव

5 सामाजिक उत्थान एवं संवैधानिक प्रावधानः नीति बनाम राजनीति 24–28

– माधुरी कुमारी

संपादकीय

वैश्विक अध्ययन केंद्र, दिल्ली विश्वविद्यालय की हिन्दी मासिक पत्रिका संश्लेषण के प्रकाशन की निरंतरता को बनाए रखते हुए इसके इस 41वें अंक को आप सभी सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष हो रहा है। यह पत्रिका अपने उद्देश्य के अनुरूप समसामयिक विषयों पर विधार्थियों एवं शोधाथियों के वैचारिक प्रकटीकरण को निरंतर मंच प्रदान करती रही है। यह हिंदी भाषा में लेखन एवं प्रकाशन में व्याप्त रिक्तता को समाप्त करने में अपना अमूल्य योगदान बनाए हुए है।

वर्तमान समाज जिन गहन समस्याओं से जूझता दिखाई पड़ रहा है उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं संभवतः अन्य समस्त समस्याओं की जननी के रूप में सामाजिक कुरीतियों की समस्याएं है। भारत में समाज सुधारों का एक दीर्घ इतिहास है। समय–समय पर समाज में प्रचलित रीतियों–नीतियों में आवश्यकतानुसार सकारात्मक परिवर्तन किया गया। चाहे किसी कुप्रथा को समाप्त करने का विषय हो अथवा प्रचलित मान्यता में संशोधन कर उसे अधिक तार्किक व समयानुकूल बनाने का, भारतीय समाज निरंतर इस दिशा में प्रगतिशील रहा है।

स्वतंत्रता पश्चात् इस परंपरा को बनाए रखते हुए हमारे संविधान निर्माताओं ने भारतोय संविधान में विभिन्न ऐसे प्रावधान किए है, जिनके द्वारा समाज सुधार एवं उत्थान की दिशा में कार्य किया जा सके। यद्यपि इस विषय पर कार्य करते हुए राज्य तथा समाज के मध्य तनाव व संघर्ष भी देखा गया है। जब–जब सरकारों ने संवैधानिक आधार पर किसी सामाजिक मान्यता अथवा नियम को परिवर्तित करने का प्रयास किया है, तब–तब पंथ व संस्कृति की सुरक्षा के संवैधानिक अधिकार को आधार बनाकर समाज के भीतर से ही विरोध के स्वर भी तीव्र हुए है, जिन्हें समय–समय पर राजनीतिक शक्तियों का भी समर्थन प्राप्त होता रहा है।

विषय की समसामयिकता को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अंक भारत में संविधान सम्मत समाज सुधारों के द्वारा सामाजिक उत्थान के विविध पक्षों एवं इस दिशा में निर्मित नीतियों एवं उन पर की जाने वाली राजनीति के मध्य द्वंद्व पर केंद्रित है।

प्रस्तुत अंक में प्रकाशित समस्त लेख मौलिक है तथा संपादकीय मंडल ने इनकी मौलिकता को किसी भी रूप में प्रभावित एवं परिवर्तित करने का प्रयास नहीं किया है। आप समस्त पाठकों

द्वारा इस अंक के संबंध मे प्राप्त प्रतिक्रियाओं के आधार पर हम संश्लेषण के आगामी अंकों में और अधिक गुणवत्ता लाने का प्रयास निरंतर करते रहेंग।

संपादक मंडल

शुक्रवार, 14 जनवरी 2022

1

सामाजिक उत्थान की चुनावी रणनीति: अनुसूचित जाति/जनजाति के राजनीतिक उत्थान का अवलोकन

सुशांत यादव

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

1980 के दशक के पश्चात् जब सम्पूर्ण विश्व की राजनीतिक व्यवस्था का रुझान दक्षिणपंथी होने लगा तो भारत भी इससे अछूता नहीं रहा। समाजवाद के भीतरी अंतर्विरोध और अस्मितामूलक राजनीति के उभार नें भारतीय राज्य की समाज के नियामक होने की क्षमता में शीघ्रता से ह्रास कर कर दिया। जिसके अंतर्गत हम देखते हैं कि भारतीय राजनीति में कांग्रेस प्रणाली की अवधारणा समाप्त हो जाती है। कांग्रेस प्रणाली (जिसे छाता प्रणाली, एकदलीय प्रभुत्व प्रणाली या सीमलेस वेब जैसी संज्ञाओं से विश्लेषित किया जाता था) से तात्पर्य वस्तुतः एक ऐसी दलीय प्रणाली से था जिसमें भारत की समस्त विविधताओं यथा जातीय, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, भाषाई और भौगोलिक विभिन्नताओं का समावेश हो। स्वतंत्रता पश्चात् इस समावेशीकरण की अवधारणा को बनाए रखने में कांग्रेस निरंतर चार चुनावों तक सफल होती रही, परंतु उसके पश्चात धीरे–धीरे जातीय प्रतिनिधित्व के आधार पर लोगों का कांग्रेस से मोहभंग होने लगा और उसकी जगह अस्मिता आधारित क्षेत्रीय सामाजिक समूहों नें उभरना प्रारंभ किया। इस उदय को कंचन चंद्रा अपनी पुस्तक 'व्हाई इथनिक पार्टी सक्सीड पैट्रोनेज एंड एथनिक हेड काउंट्स इन इंडिया' में एक नया आयाम प्रदान करती हैं और बताती हैं कि आगे चलकर यही समूह अस्मिता आधारित दलों के उदय का आधार बनते हैं।

कांग्रेस प्रणाली और इसके ह्रास की अवधारणा रजनी कोठारी की सैद्धांतिक देन है जिसके पश्चात वह भारतीय राजनीति में बहुदलीय प्रणाली के उदय को भी व्याख्यायित करते हैं। कोठारी के बहुदलीय प्रतियोगिता के तथ्यों की खोज के संबंध में धीरूभाई सेठ अपनी पुस्तक "सत्ता और समाज" में बताते हैं, कि उपर्युक्त तथ्य 'नये मध्यवर्ग' की विशेषता हो सकती है। 'नया' क्योंकि इसका उद्भव सीधे जाति व्यवस्था के विघटन के कारण होता है, इसने सामाजिक रूप से बहुत अधिक पुराने, उच्च जाति उन्मुख मध्यम वर्ग की तुलना में इसे विविधतापूर्ण बना दिया है जो स्वतंत्रता के समय अस्तित्व में था। इसके अतिरिक्त, पारंपरिक पदानुक्रम में उच्च स्थिति पुराने मध्य वर्ग में प्रवेश के लिए एक मानदंड के रूप में निहित रूप से काम करती है।

संस्कार और संस्कृतिकरण दोनों ने 'नए' मध्यम वर्ग के गठन में अपनी प्रासंगिकता खो दी है। आज के मध्य वर्ग की सदस्यता नई जीवन शैली, कुछ आर्थिक परिसंपत्तियों के स्वामित्व और मध्यम वर्ग से संबंधित आत्म चेतना से जुड़ी है। इस प्रकार यह विभिन्न जातियों के सदस्यों के लिए खुला है। आधुनिक शिक्षा, गैर–पारंपरिक व्यवसायों या उच्च आय और राजनीतिक शक्ति को इस मध्यम वर्ग में प्रवेश करने के लिए आवश्यक तत्व मान लिया गया।

इस नए मध्य वर्ग को वास्तव में जिसकी उत्पत्ति एक सैद्धांतिक विमर्श है, शुद्ध वर्ग श्रेणी के निर्माण के रूप में नहीं देखा जा सकता है। प्रवेश के रूप में यह जाति के कुछ तत्वों को अपने भीतर समाहित करता है, मध्यम वर्ग के व्यक्ति को अपनी जाति के सामूहिक राजनीतिक और आर्थिक संसाधनों से सुविधा होती है। उदाहरण के लिए, मध्यम वर्ग में प्रवेश करने वाले उच्च जाति के व्यक्तियों के पास वे संसाधन होते हैं जो उनकी पारंपरिक पदानुक्रम में जाति स्थिति से जुड़े होते हैं। इसी प्रकार, निम्न जाति के सदस्यों के लिए, पारंपरिक स्थिति संसाधनों की कमी के कारण, मध्यम वर्ग में उनके प्रवेश को सकारात्मक–कानूनी प्रावधानों जैसे सकारात्मक कार्रवाई की सुविधा मिलती है, जिसके लिए वे अपनी निम्न पारंपरिक स्थिति के आधार पर अधिकारी होते हैं। ऐसा लगता है कि भारतीय मध्यम वर्ग अपने भीतर जातिगत तत्वों को इस हद तक ले जाना जारी रखेगा, कि मध्यम दर्जे की आकांक्षाओं को आगे बढ़ाया जाता रहे, और उनके जातिगत बोध की इस संभावना को उन जातियों के संदर्भ में देखा जाता है, जिनसे वे संबंधित हैं। फिर भी नए मध्य वर्ग के गठन के लिए महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि अपनी जातियों के सामूहिक संसाधनों का उपयोग करते समय, सभी जातियों के व्यक्ति जो इसमें प्रवेश करते हैं।

कंचन चंद्रा इस अस्मिता आधारित विमर्श के दौरान उदित हो रहे दलों को जातीय पार्टी के रूप में परिभाषित करती हैं कि, एक ऐसा दल जो एक विशेष जातीय श्रेणी का प्रतिनिधित्व करती हो या दूसरी जातियों के बहिष्करण के कारण स्वयं को चौंपियन के रूप में दर्शाती हो और जो मतदाताओं को जुटाने की अपनी रणनीति के लिए इस तरह के प्रतिनिधित्व की अवधारणा को केंद्र में रखती हो, पहचान आधारित दल कहे जाते हैं। इस परिभाषा के कुछ विशिष्ट सिद्धांत हैं जो कि प्रतिलेखन, अपवर्जन और केंद्रीयता हैं। ये ऐसी श्रेणियां हैं जो इस प्रकार के दलों का निर्माण करती हैं, जिन्हें उनके मुखर विशेषताओं के अनुसार परिभाषित किया जाता है जिसमें 'अंदरूनी' जातीय श्रेणियों का जमाव हमेशा जाति के 'बाहरी लोगों' के बहिष्कार के साथ होता है। वहीं एक गैर–पहचान आधारित पार्टी को, एक ऐसी पार्टी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो जातीयता से संबंधित एक अपील को अपनी गतिशील रणनीति के रूप में प्रस्तुत करती है, लेकिन यह जातीयता के मुख्य आयाम (ओं) पर सभी संबंधित श्रेणियों के प्रति तटस्थता या समानता की स्थिति को मानती हो।

कंचन चंद्रा जहां अपना वाद–विवाद बसपा के आस–पास ही रखती हैं वहीं बद्री नारायण अपनी पुस्तक 'हिंदुत्व का मोहिनी मंत्र' में हिंदुत्ववादी शक्तियों द्वारा दलितों को अपनी ओर खीचनें की मोहक रणनीतियों का खुलासा करतें हैं और बताते हैं कि, ये शक्तियां दलित जतियों के लोकप्रिय मिथकों, स्मृतियों और किवदंतियों को खोजकर उनकी हिंदुत्ववादी व्याख्या करती हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार में किए गए सर्वेक्षणों पर आधारित इस पुस्तक में बताया गया है कि दलित नायकों को मुस्लिम आक्रांताआं के विरुद्ध लड़ने वाले योद्धाओं के रूप में प्रस्तुत करते हुए हिंदुत्ववादी शक्तियाँ उन्हें हिंदू धर्म और संस्कृति के रक्षकों के रूप में पुनर्व्याख्यायित करती है, तथा मिथकों को एक बड़े और एकीकृत हिंदू महावृतांत से जोड़ने का प्रयास करती है। बद्री नारायण की इस पुस्तक से सबसे रुचिकर तथ्य यह निकलकर आता है कि दलितों के अतीत की हिंदुत्ववादी पुनर्व्याख्या को दलित समुदाय एक शक्तिशाली पूँजी के रूप में लेते हैं और उसे एक ओर ऊपरी जातियों में अपनी स्वीकार्यता बढ़ाने और दूसरी ओर सवर्ण प्रभुत्व को क्षीण करने के लिए साथ–साथ प्रयोग करते हैं। पुस्तक के भीतर बद्री नारायण उत्तर भारत के ग्रामीण समाज में 'पापुलर' की संरचना और उसमें पिरोए गए साम्प्रदायिक तत्वों को भी समझने की कोशिश करते हैं।

बद्री नारायण अपनी प्रकाशित पुस्तक "रिपब्लिक ऑफ हिंदुत्व हाउ द संघ इज रिशेपिंग इंडियन डेमोक्रेसो" में उपर्युक्त लोकतांत्रिक विरोधाभास के धीरे–धीरे समाप्त होने के कारणों की विस्तृत विचार–विमर्श करते हैं और बताते हैं कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का अनुसांगिक संगठन "वनवासी कल्याण आश्रम" लोकतंत्र के इन अदृश्य लोगों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न करके उन्हें चुनावी लोकतंत्र में सहभागी बनने के लिए प्रेरित कर रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जहां बद्री नारायण यह बताते हैं कि, दलित राजनीति को हिंदुत्व की अवधारणा के अंतर्गत राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसके अनुसांगिक संगठनों द्वारा समूहबद्ध करके चुनावी राजनीति में अपने वैचारिक दल भाजपा को लाभ पहुँचानें की निरंतर प्रयास किया जा रहा है।

इसी कड़ी के अंत में प्रो. चौधरी की पुस्तक भारतीय दलीय राजनीति में हुए विमर्श की राजनीतिक श्रृंखला के सबसे महत्वपूर्ण तथ्यों को एक साथ जगह प्रदान करती है। यह पुस्तक राजनीतिक दलों की उत्पत्ति और विकास के साथ भारत में स्वतंत्रता के पश्चात से हुए दलीय परिवर्तन की एक व्यापक छवि प्रस्तुत करती है। इसके अतिरिक्त यह पुस्तक दलों की राजनीति को समझने में दलीय व्यवस्था और सामाजिक उत्थान, राजनीतिक समूहबद्धता की भूमिका और चुनावी परिवर्तन के विकास की रूपरेखा के मुख्य चरणों पर भी प्रकाश डालती है। जिसके अंतर्गत जाति, वर्ग और जातीयता के मध्य राज्य, समाज और लोकतंत्र के मध्य सम्बन्धों का भी सुस्पष्ट विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। भारत में दलगत राजनीति और इस दलगत राजनीति से उत्पन्न टकराव की भी एक श्रृंखला का यह पुस्तक विश्लेषण करती है। इसके अतिरिक्त

भारतीय राजनीति में बहुदलीय प्रणाली के सामने उत्पन्न चुनौतियों, गठबंधन की राजनीति में विचारधारा का त्याग करके सत्ता के लिए दलगत गठजोड़ से उत्पन्न नवीन समस्याओं का भी क्रमबद्ध विवेचन उपलब्ध कराती है।

निष्कर्ष के तौर पर हम यह देखते हैं कि यह भारतीय राजनीति का स्याह पक्ष है कि इसमें जाति सदैव प्रमुख निर्धारक के तौर पर बनी रहती है। किन्तु, हमने कुछ जातियों को जातिगत राजनीति से अलग पाया है, जिनके लिए विकास की राजनीति केंद्रीय मुद्दा बन गई है। सामाजिक उत्थान की राजनीति जो क्षेत्रीय दलों से प्रारंभ हुई थी उसमें में परिवर्तन शुरू हो चुका है और आज की चुनावी राजनीति में सामाजिक उत्थान का दावा करने वाली लगभग सभी जातीय दल चुनाव में पराजय का सामना कर रहे हैं। इनके हार का मुख्य कारण यह है कि अधिकांश जाति आधारित दलों पर एक ही परिवार का नियत्रंण है, तथा राजनीतिक पद और लाभ का वितरण परिवार के बाहर नहीं होता है। जिन्होंने समाजिक उत्थान के नाम पर विकास के एजेंडे से अनुसूचित जाति और जनजाति के बड़े जनसमूह को अलग रखते हुए कुछ चिन्हित लोगों के विकास को गति दी है। बसपा की राजनीति में भी इसी प्रकार क विरोधाभास को देखा जा सकता है। जो पार्टी ब्राह्मणवादी संस्कृति के विरुद्ध खड़ी थी, बाद में उसी से जुड़ गई। उदाहरण के लिए, बसपा सुप्रीमो मायावती ने पार्टी के प्रतीक हाथी को एक सार्वजनिक सभा में गणेश के साथ जोड़ा ड़ती हैं, जिससे पता चलता है कि पार्टी इस समय सामाजिक न्याय के अपने मूल सिद्धांतों से हट गई है। इस प्रकार, अनुसूचित जातिध्जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के मतदाताओं के अपने जातीय दलों के प्रति इस असंतोष ने उन्हें भाजपा के राजनीति एजेण्डे 'सबका साथ, सबका विकास' की ओर बढ़ने के लिए अग्रसर किया, और यही कारण है कि भाजपा उपर्युक्त समुदायों का समर्थन अपनी तरफ खींचने में सफल हो गई, और लोकसभा एवं राज्य विधानसभा में निरंतर विजय प्राप्त कर रही है।

संदर्भ-सूची

कोठारी, रजनी (2010), कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स. नई दिल्ली, ओरियंट ब्लैकस्वान

चौधरी, सुनील कुमार एंड योगेश अटल (2015), राइट टर्न इंडियन पॉलिटी, मोदी ऑन बीजेपी'ज चौरीऑट, नई दिल्ली, हर–आनंद पब्लिकेशंस

छिब्बर, प्रदीप के. (2001) "सोशल क्लीवेज, एलेक्शन एंड द इंडियन पार्टी सिस्टम". जोया हसन (सं). पार्टीज एंड पार्टी सिस्टम इन इंडिया. नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

जैफ्रेलोट, क्रिस्टोफे (2014), रिलीजन, कास्ट एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया. नई दिल्ली, प्राईमस

जोधका, सुरेंद्र एस. (2015), कास्ट इन कंटेम्पररी इंडिया. नई दिल्ली, रूटलेज

दुबे, अभय कुमार (2019), हिंदू एकता बनाम ज्ञान की राजनीति. नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन

नारायण, बद्री (2018), खंडित आख्यानः भारतीय जनतंत्र में अदृश्य लोग. नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

♦♦♦♦♦

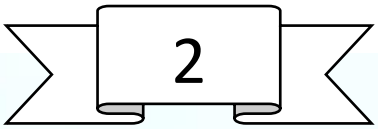

सशक्त, सक्षम व सुदृढ़ समाज का आधार महिलाएं

सृष्टि

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रिया॥

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु त्यकुलमम्।

न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा।।

उपर्युक्त वाक्यांशों से महिलाओं की महत्ता को भली–भांति रूप से समझा जा सकता है। अर्थात् इसका अर्थ यह हुआ कि जहां स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते है ओर जहां स्त्रियों की पूजा नहीं होती है, उनका सम्मान नहीं होता है वहाँ किए गए समस्त अच्छे कर्म निष्फल हो जाते है। तथा जिस कुल में स्त्रियाँ कष्ट भोगती है वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। और जहां स्त्रियाँ प्रसन्न रहती है वह कुल सदैव समृद्ध रहता है। अतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि महिलाएं किसी भी समाज व राष्ट्र का आधार होती है। एक समर्थ, सक्षम तथा सुदृढ़ समाज हेतु सशक्त महिला की आवश्यकता होती है। इस आलेख के मध्यम से महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका समाज व राष्ट्र के निर्माण में किस प्रकार प्रभावशाली रहती है, को प्रदर्शित करने का प्रयास किया जाएगा। इस आलेख में सशक्त महिला से क्या तात्पर्य है, को भी समझने का प्रयास किया जाएगा।

सशक्तिकरण अब एक प्रचलित शब्द बन गया है। सशक्तिकरण परिवर्तन की एक प्रक्रिया को संबोधित करता है। मुख्यता इसका उदेश्य निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में लोगों के वंचित भाग को सहभागिता प्राप्त करना है। सशक्तिकरण व्यक्तियों एंव समुदायों की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक एंव आध्यात्मिक सुदृढ़ता को बढ़ाने की ओर संकेत करता है। सशक्तिकरण व्यक्तियों व समूहों की क्षमता को विस्तृत करने की एक प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत विकल्पों का निर्माण होता है तथा उन विकल्पों को वांछित कार्यों व परिणामों में परिवर्तित किया जाता है। इस संदर्भ में, यह जीवन के उत्तम विकल्पों को बनाने हेतु लोगों की योग्यता में विस्तार को उद्धत करता है, जिन्हें पूर्व में उन्हें वंचित रखा गया था।

सशक्त व्यक्ति के पास विकल्पों एंव कार्यों की स्वतंत्रता होती है। जो उनके जीवन के प्रवाह व निर्णय, जो उनके जीवन को प्रभावित करते है, की सशक्तता की ओर प्रवृत होते है। अर्थात् सशक्तीकरण स्व–निर्धारित परिवर्तन को दर्शाता है। सशक्तीकरण का विषय, जो शिक्षा व स्वास्थ्य सबंधी संरक्षण से अभिशासन व आर्थिक नीतियों तथा गतिविधियों तक विविध आयामों का विषय बन गया है। जिनके माध्यम से विकासात्मक अवसरों को बढ़ाने, विकासात्मक परिणामों को विस्तृत करने व लोगों के जीवन की गुणवत्ता को सुधारने के माध्यम से निर्धन व्यक्तियों को सशक्त करने का प्रयास किया जाता है।

अधिकतर, सशक्तिकरण शब्द को महिलाओं के संबंध में प्रयोग किया जाता है। अतः मूलत: इस शब्द का प्रयोग महिलाओं के कल्याण, महिलाओं का विकास, महिलाओं का उन्नयन, सहभागिता एंव महिलाओं के अंतरू करण के स्थान पर प्रयोग किया जाता है। महिला सशक्तिकरण के लिए शक्ति के पुन: एकत्रीकरण, घर, परिवार व संस्था तथा समाज के सभी स्तरों पर निर्णय–निर्माण की आवश्यकता है। अतः सशक्तिकरण एक सक्रिय प्रक्रिया है, जिसका लक्ष्य महिलाओं को शक्ति का हंस्तांतरण करना है। महिलाओं का सशक्तिकरण महिलाओं को अपने जीवन के पर शक्ति व नियंत्रण से सबंधित है। जिसमें जागरूकता को विकसित करना, आत्मविश्वास का निर्माण करना, विकल्पों का विस्तार करना तथा संसाधनों के ऊपर पहुँच व नियंत्रण सम्मिलित है। सशक्तिकरण स्वयं के भीतर से आना चाहिए, अर्थात् स्वयं सशक्त होना।

महिला सशक्तिकरण आत्म–निर्भरता, स्वाभिमान, आत्म–विश्वास, आत्म–मूल्य की विशेषता के लिए सहायक व बंधनमुफ्त है। इस प्रकार सशक्तिकरण के बहू–आयाम है जो अंत संबंधित है। अतएव महिला सशक्तिकरण अनवरत् व संपोषणीय विकास का एक आवश्यक तत्व है।

पुरातन काल मे महिलाओं की स्थिति अधिक उत्तम थी। मध्यकाल मे विभिन्न कारणों के चलते महिलाओं की स्थिति में खराब हुई। 1880 के दशक में महिलाओं की स्थिति को उत्कृष्ट बनाने के लिए कुछ सुधार हुए। भारत में महिलाओं के सभी सामाजिक बाधाओं से स्वतंत्रता व समानता के अधिकार के लिए संघर्ष प्रारम्भ हुए। राजा राम मोहन रॉय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती, पंडिता रमाबाई आदि ने महिलाओं के उत्थान के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए।

समानता एंव सामाजिक न्याय की अवधारणा के आधार पर उसे समान अवसर प्रत्येक क्षेत्र में प्राप्त हो जिससे वह प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सके। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए महिलाओं के सुरक्षा के दृष्टिकोण से कुछ निम्नलिखित कानून बनाए गए।

1- सती प्रथा निषेध अधिनियम (1829)

2- बाल विवाह निरोधक अधिनियम (1929)

3- हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम (1856)

4- हिन्दू महिलाओं का संपत्ति पर अधिकार का नियम (1937)

5- विशेष विवाह अधिनियम (1872,1923,1954)

6- प्रथक रहने पर व भरण–पोषण हेतु हिन्दू विवाहित महिलाओं का अधिकार अधिनियम (1946)

7- हिन्दू विवाह निर्योग्यता अधिनियम (1946)

महिलाओं के सशक्तिकरण व लैंगिक समानता की अवधारणा भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, नीति–निर्देशक तत्वों में निहित है। लोकतंत्र में हमारे कानून, विकासात्मक नीतियों, योजनाओं व कार्यक्रमों का उद्देश्य विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं को विकसित करना है। संविधान मं निर्मित महिलाओं से संबन्धित प्रावधानों का उद्देश्य महिलाओं के हितों व अधिकारों का संरक्षण करना है। महिलाओं की सशक्तिकरण के दिशा में भारत सरकार द्वारा विभिन्न प्रयास किए जा रहे है जिनमे मुख्य रूप से बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना, उज्ज्वला योजना, नारी शक्ति पुरस्कार, महिला शक्ति केंद्र योजना तथा सुकन्या समृद्धि योजना जैसी विभिन्न योजनाएं व परियोजनाओं का संचालन किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त, हाल ही में केंद्रीय सरकार ने महिलाओं के विवाह करने की न्यूनतम आयु सीमा को 18 से बढ़ाकर 21 वर्ष करने का प्रस्ताव पारित किया है। बढ़ी हुई विवाह की आयु एक बालिका को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने, कौशलता प्राप्त करने तथा वित्तीय स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए उचित समय मिल सकेगा। भारत में जिस आयु में बालिकाओं को अपने भविष्य तथा शिक्षा की ओर ध्यान देना चाहिए उस समय में बालिकाओं का कम आयु में ही विवाह कर दिया जाता है। 21 वीं शताब्दी में इस रूढ़िवादी प्रथा को परिवर्तित करने की आवश्यकता है। जिससे महिलाओं को अपनी कुशलता, क्षमता व दक्षता को विस्तृत करने, सुदृढ़ करने के लिए पर्याप्त समय प्राप्त हो सके। यह कदम महिला सशक्तिकरण को अभिभूत कर सकता है।

वर्तमान में समकालीन समाज में महिलाओं की स्थिति भी असाधारण नहीं है। आज सभी क्षेत्रों में महिलाओं को समान अवसर तथा प्रोत्साहन मिल रहे है। वो चाहे खेल हो या अंतरिक्ष यात्रा हो। सभी क्षेत्रों में महिलाएं आगे आ रही है। परंतु वास्तविक स्थिति को भी अस्वीकृत नहीं किया जा सकता है। आज भी कुछ क्षेत्रों व स्थानों पर महिलाओं के साथ भेदभाव, अत्याचार, शोषण भी हो रहा है। इनके कारणों पर भी ध्यान देना आवश्यक है। यदि हम इसका विश्लेषण करते है तो इसके सामान्यतः दो कारण प्रतीत होते है। प्रथमतया, समाज में पुरुषों का महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण मे परिवर्तन आया है। वैदिक काल मे महिलाओं को पूज्य स्थान अर्थात् देवी का स्थान दिया जाता था। केवल अपनी पत्नी को छोड़कर और अन्य किसी भी महिला को माता के रूप मे देखा जाता था। द्वितीय कारण यह है कि आज के समय में स्वयं महिलाओं की सोच व विचारों मे भी परिवर्तन हो रहा है। हमें यह चिंतन करना चाहिए कि हम क्या करे कि हमें महिलाओं के सम्मान के लिए मांग न करनी पड़े, अपितु हमें सम्मान स्वतरू ही मिल जाए।

परिवार का केंद्र बिन्दु एक महिला है। मातृत्व, कर्तव्य, त्याग व सहनशीलता महिलाओं के सहज गुण है। इन सभी गुणों के माध्यम से ही एक महिला अपने परिवार के सदस्यों को अच्छे संस्कार दे सकती है। और एक अच्छे परिवार से ही एक उत्तम समाज का निर्माण होता है और एक उत्तम समाज ही एक सर्वोत्तम राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। अतः महिला अपने स्वभाव से अच्छे नागरिकों का निर्माण कर सकती है। प्रत्येक महिला को विशाल व विस्तृत भाव से चिंतन करना चाहिए कि अपने परिवार से थोड़ा आगे आकर समाज की ओर सोचना चाहिए। एक महिला ही अपने धर्म, संस्कृति तथा सांस्कृतिक मूल्यों को सुरक्षित, संरक्षित तथा संवर्धित कर सकती है।

संदर्भ–सूची

K.D Gangrade, Gandhi and Empowerment of Women: Miles to go in Promila Kapur, *Empowering the Indian Women*, (ed), (2001). Publication Division, New Delhi, p-01.

Dr. Paramjit Kaur J Walia, (2015). *Women Entrepreneurship and Empowerment*, Galaxy Book Compony, Jaipur, P-01.

H.M Hemalatha, Empowerment of Women- A Perspective in R. Venkata Ravi, V. Narayana Reddy and M. Venkataramana, (ed), (2004). *Empowerment of People: Grassroots Strategies and Issues*, Kanishka Publishers, Distributors, New Delhi, P-01.

http://www.bhaskar.com/news/RAJ-DAU-MAT-latest-dausa-news-025503-1234883-

https://www.bhaskar.com/db-original/explainer/news/minimun-age-for-marriage-of-women-from-18-21-in -india-12925015.html.

♦♦♦♦♦

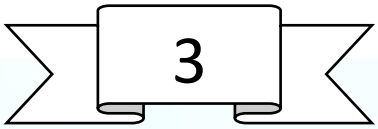

दलितों के विरुद्ध सामाजिक अपराध में राजनीतिक अवसरवादिता

शोधार्थी

राजेन्द्र कुमार, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

सामान्यत: समाज में सुख और शांति बनाए रखना अत्यधिक हो गया है। विशेषतया भारत जैसे देश में जहाँ शांति बनाए रखने के लिए अत्यधिक कठिन विधि का शासन लागू किया गया था। तथापि जंगलराज या पुराने मान्यताओं और सामाजिक नियमों से विशेषाधिकार या सुविधा प्राप्त सामाजिक तत्वों के लिए यह ऊपर से थोपी गए प्रावधान थे, क्योंकि 26 जनवरी 1950 के पश्चात संविधान लागू होने के साथ ही देश में असंवैधानिक शासन की समाप्ति पर नए प्रकार के संवैधानिक शासन की शुरुआत हो रही थी। अब देश में राजा पेट से नहीं अपितु मत पेटी से चुना जाना था। किन्तु कानून आने से सभी सुधर जाएं ऐसा समझना मात्र एक कोरी कल्पना है। जो लोग अपराध को मन मस्तिष्क में बसा लें उनसे नियम कानून का पालन करने की आशा करना प्रायरू घोर निराशा में परिवर्तित हो जाती है। समाज की सुख शांति अपराध से भंग हो जाती है। वैसे अपराध स्वयं में एक भयंकर संज्ञा है जिसका संज्ञान सामान्यतरू "विधि का शासन" लेता रहा है। यहाँ किसी भी चीज को यूं ही अपराध मात्र कह देने से काम नहीं चलेगा अपितु आम–जन को यह जानना आवश्यक है कि अपराध है? क्या भारत के संदर्भ में भारतीय दंड नीति अर्थात आई पी सी की धारा 40 अपराध की परिभाषा निश्चित करतो है और सी आर पी सी 2छ बताती है कि "ऐसा कोई भी कार्य जो किसी भी विधि में दंडनीय हैं अपराध कहलाता है। भारतीय कानून के साथ–साथ विधि या कानून के क्षेत्र में प्रसिद्ध विचारकों के विचार से भी अपराध को समझना आवश्यक हो जाता है। विधि व्यक्ता ब्लैकस्टोन का मानना है कि "अपराध ऐसा कार्य है जो सार्वजनिक विधि के उल्लंघन से होता है। "कैरी मानते हैं कि "अपराध ऐसे अवैध कार्य को माना जाता है जिनके लिए दंड दिया जाता है।" क्रोम एंड जोंस का मानना है कि अपराध जानबूझकर कानून का अपकार है अर्थात स्महंस ूतवदह है जिसक उपचार के रूप में राज्य आरोपी को दंडित करता है।" इन सबके अतिरिक्त बहुत सरल शब्दों में रसैल का अपराध से तात्पर्य है कि "समाज की सुख शांति को नुकसान पहुंचाना ही अपराध है।" जो कि भारतीय समाज के संदर्भ में एकदम सटीक बैठती है, क्योंकि यहाँ दिन–प्रतिदिन ऐसा ही किया जाता है। जिस पर कई बार प्रशासन शासन ध्यान देता है या फिर सोया रहता है। आइए भारत के संदर्भ में समाज से जोड़कर सामाजिक अपराध को जानने का प्रयास करें कि किस प्रकार समाज के एक विशेष तबके, जिसे भारतीय समाज में दलित कहा जाता है, के

विरुद्ध अपराध किया जाता है यह कितना सरल है इसको कैसे सामाजिक समर्थन प्राप्त हो जाता है?

दलितों के विरुद्ध सामाजिक अपराध का इतिहास

भारत में दलितों के ऊपर सामाजिक अपराध का इतिहास अत्यधिक प्राचीन है। इसका प्रारंभ "मनुस्मृति" के साथ हुई थी। मनुस्मृति को तब "धर्म विधान" या "दंडविधान" माना गया था, जिसमें चार वर्णों का उल्लेख उनके कर्तव्यों के सहित किया गया था। इसका प्रयोग ब्राह्मणवादियों व जातिवादियो ने अपने स्वार्थ हेतु किया व भारत की एक बहुत बड़ी जनसंख्या के साथ अमानवीय व्यवहार किया। उन्हें कभी अछूत, कभी मलेच्छ, तो कभी दलित कहा गया, पर कभी इंसान नहीं माना गया। किन्तु यह इतिहास धीरे–धीरे परिवर्तित हुआ और शूद्रों के लिए मानवतावादी दृष्टिकोण रखने वाले महान चिंतक भी सामाजिक धरातल पर आए। ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले सत्यशोधक समाज की संस्थापक करते हैं स्त्री शिक्षा पर काम करते हैं वह "गुलामगिरी" जैसे साहित्य की रचना करते हैं, जिससे कि शूद्रों को उनके शोषण का आभास हो वह उच्च वर्णों व जातियों के साहित्य का पालन करना छोड़ दें जो उन्हें गुलाम बनाकर ही रखते थे।स्वाधीनता आंदोलन में जहाँ सभी भारत की स्वतंत्रता की बात कर रहे थे वही भगत सिंह अपने मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण सभी भारतीयों की संपूर्ण स्वतंत्रता की बात कर रहे थे। वह चाहते थे कि दलितों को भी स्वतंत्रता मिले उनके साथ भी मानवीय व्यवहार किया जाए। वह उनके लिए स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे का दृष्टिकोण रखते थे। इसीलिए वह "अछूत की समस्या" की बात करते थे। वह मानते थे कि सबसे पहले अछूत कहना छोड़ना चाहिए और यदि धर्म अछूतों को समानता नहीं दे सकता तो ऐसे धर्म को त्याग देना चाहिए। वह उनका आह्वान करते हुए लिखते हैं कि "तुम्हें अपने लिए स्वयं खड़ा होना होगा क्योंकि तुम्हारे दम पर ही शिवाजी और गुरु गोविंद सिंह बहुत महान बने।" भगत सिंह अछूतों की तुलना बेबे अर्थात माँ से करते हैं, क्योंकि वह मानते हैं कि जिस प्रकार एक माँ अपने शिशु का मैला साफ करती है उसी प्रकार शोषितों ने पूरे भारतीय समाज का मैला साफ किया है। वे उन्हें इस गंदे कार्य से स्वतंत्रता भी दिलाना चाहते थे। दक्षिण भारत में ई वी रामास्वामी पेरियार ने दलितों के लिए "आत्मसम्मान" आंदोलन चलाया वह दलितों के प्रति किए जाने वाले अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध थे वह चाहते थे कि दलितों को भी अन्यों की तरह मानव समझा जाए उनके साथ पशुओं से भी बद्तर व्यवहार नहीं किया। इसलिए अपने जीवन भर दलितों को आत्म–सम्मान दिलाने के एक महान कार्य में जुटे रहे। उन्होंने दलितों को राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने का प्रयास में जस्टिस पार्टी का भी निर्माण किया। इसी राजनीतिक भागीदारी को सुनिश्चित करने की कड़ी में सबसे महत्वपूर्ण नायक रहे डॉक्टर भीमराव अंबेडकर जिन्होंने अपना सारा जीवन दलितों के उत्थान में लगा दिया। वह दलितों को एक सम्मान पूर्ण जीवन

देना चाहते थे इसलिए उन्हें वह शक्ति देना चाहते थे जिसका प्रयोग बाकी उच्च जातियां कर रहो थी। उन्होंने मनुस्मृति की परंपरा को समाप्त करने का अहम कदम उठाया अपने लेखों, कार्यों और आंदोलनों से दलितों को इकट्ठा किया। उन्होंने दलितों का आह्वान करते हुए यह नारा दिया कि "शिक्षित बनो, एकजुट हो और संघर्ष करो" जिसका पालन उन्होंने स्वयं सबस अधिक किया। यह उन्हीं के अथक प्रयास थे के कि वह संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष रहे और संविधान के साथ उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि भारत में मनुस्मृति का शासन खत्म हो और संविधान के द्वारा "विधि का शासन" शुरू हो। उनकी अध्यक्षता में संविधान में कई ऐस प्रावधान किए गए जो छुआछूत, अस्पृश्यता, जातिगत हिंसा व भेदभाव को खत्म करें। एक ओर इन सभी नायकों के कार्यों ने भारत में जातिवाद जैसे गंभीर सामाजिक अपराध को समाप्त करने का प्रयास किया व संविधान के पाश्चात संवैधानिक प्रावधानों भी दलितों के प्रति सामाजिक अपराध रोकने में अहम भूमिका निभाई। किन्तु अब अहम मुद्दा यह जाँचना है कि सभी असंवैधानिक नियमों को समाप्त कर संविधान द्वारा विधि के शासन दलितों के विरुद्ध सामाजिक अपराध होते हैं या नहीं? यदि देखा जाए तो इसका उत्तर नकारात्मक ही निकलता है, क्योंकि भारत में संविधानवादियों से भी अधिक मनुवादी, जातिवादी हैं जो विधि के शासन को अस्वीकृत कर मनुस्मृति के शासन में मानते हैं। वह समाज में सभी लोगों को समान नहीं मानते उनके लिए आज भी वर्ण, जाति, गोत्र बहुत महत्वपूर्ण है इसलिए वह आज भी दलितों व पिछड़ो के विरुद्ध सामाजिक अपराध करते रहते हैं। उनके मन में आज भी दलितों और पिछड़ों के विरुद्ध द्वेष, घृणा है। उन्हें जब भी अवसर मिलता है तो वह दलितों को फिर से वही मनु की व्यवस्था का शिकार बना देते हैं। उनके लिए यह दलितों को सबक सिखाने जैसा है, क्योंकि इन संकुचित मानवों को लगता है कि दलितों का स्थान वही है, जो मनुस्मृति में वर्णित है। इसलिए आज भी दलितों को सबक सिखाने के लिए उनकी ओर से कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। मेरठ में दलित युवक को गोली मारकर फिर मोटरसाइकिल के पीछे बांधकर घसीटा जाता है, जिससे उसके अंग छिन्न–भिन्न हो जाते हैं। बदायूँ में दलित लड़कियों का बलात्कार कर उन्हें मार कर उनकी लाशों को पेड़ से टांग दिया जाता है। बिहार के मुजफ्फरपुर में 3 दलित औरतों को चुड़ैल घोषित किया गया। उन्हें जबरन पेशाब पिलाया गया और आधा नंगा करक पूरे गांव में घुमाया गया। ना जाने ऐसे कितने ही उदाहरण और मिलेंगे ? इस सबसे यह अहम प्रश्न निकल कर आता है कि उन जातिवादियों को ऐसा करने के लिए क्या उन्हें किसी का समर्थन प्राप्त है? और इन सभी कृत्यों के प्रति प्रशासनिक व राजनीतिक भूमिका क्या रही? क्या प्रशासन और राजनीति भी जातिगत हिंसा, या अपराध के लिए अवसर प्रदान करती है?

दलितों के प्रति सामाजिक अपराध में प्रशासनिक और राजनीतिक पहल

जब दलितों के प्रति सामाजिक अपराध में प्रशासन और राजनीति की भूमिका को ध्यान से देखा जाता है, तो यह भूमिका दलितों के बचाव में बहुत ही नगण्य मालूम होती है। इसीलिए अब तक मनुवादी जातिवादी तत्व मानवतावादी पक्ष पर प्रभावी रहे हैं। समकालीन दौर में दलितों के ऊपर जातिगत अपराध या हिंसा करना अधिक सरल दिखाई देता है। विशेष रूप से उन लोगों के लिए जिनका प्रशासन या राजनीति से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंध है। यही कारण ऐसे लोगों के लिए दलितों के प्रति सामाजिक अपराध करने का अवसर खोल देता है। अब तो दलितों की स्थिति और भी चिंतनीय है क्योंकि प्रशासन और राजनीति की भूमिका भी उनके विरुद्ध हो चुकी है अब ना सिर्फ समाज जातिवादी है अपितु ऐसे ही समाज उपस्थिति प्रशासन और राजनीति में भी दिखाई देती है। इससे दलितों के ऊपर जातिगत हिंसा पहले से कहीं अधिक बढ़ चुकी है, क्योंकि अब प्रशासन और राजनीति भी इसमें सम्मिलित है। इसलिए इसके विरोध में कुछ भी कर पाना अब बहुत कठिन हो गया है। ऐसे ही कुछ उदाहरण वर्तमान में कुछ घटनाओं से मिलता है ।

जैसे मई, 2014 में उत्तर प्रदेश के बदायूं में दो दलित बहनों को मार कर पेड़ पर लटका दिया गया उनकी हत्या से पहले उनके साथ बलात्कार किया गया था जिसमें 2 पुलिस कॉन्स्टेबल भी शामिल थे। जून 2017 में उत्तर प्रदेश के ही उन्नाव में 17 वर्ष की दलित युवती के साथ बलात्कार किया गया जिसका आरोपी बी जे पी विधायक कुलदीप सिंह सेंगर था। इसने देखते ही देखते पीड़िता के पूरे परिवार को खत्म कर दिया। मध्यप्रदेश के टीकमगढ़ में एक गांव के सरपंच ने एक दलित व्यक्ति को बंधक बनाकर उसके साथ इसलिए गाली–गलौच और मारपीट की क्योंकि वह उसके घर के सामने से निम्न जाति का होते हुए भी मोटरसाइकिल पर बैठकर जा रहा था। यदि हाल ही की कोरोना त्रासदी के दौरान की बात करें तो दलितों के ऊपर सामाजिक अपराध बढ़ते जा रहे हैं। मध्य प्रदेश के गुना में एक दलित दंपत्ति को पुलिस प्रशासन के द्वारा इतना अधिक प्रताड़ित किया गया कि वह कीटनाशक पीने के लिए मजबूर हो गए। उन्हें मारपीट कर उनके द्वारा खेती की गई जमीन पर से बेदखल कर दिया गया। बिहार के ही मुजफ्फरपुर में 3 दलित औरतों को चुड़ैल घोषित कर दिया गया उनके सिर के बाल मुंडवाए गए, उन्हें जबरन पेशाब पिलाया गया और आधा नंगा करके घुमाया गया। कर्नाटक के विजपूरा डिस्ट्रिक्ट में जिले में एक 28 वर्षीय दलित व्यक्ति की बेरहमी से पिटाई की गई क्योंकि उसने उच्च जाति के व्यक्ति की मोटरसाइकिल को छू लिया था। बिहार मध्य प्रदेश आर उत्तर प्रदेश में ऐसे बहुत सारे मामले आए जहां पर कोविड–19 आइसोलेशन केंद्रों में लोगों ने खाना इसलिए फेंक दिया, क्योंकि वह खाना दलितों के द्वारा बनाया गया था। दलित तबके से ही दलितों के लिए आवाज उठाने वाले अरविन्द बंसोड़ की लाश नागपुर में गंभीर हालत में

मिली उनके साथ NCP के दफ्तर वालों ने मारपीट की थी पर पुलिस ने शिकायत दर्ज करने से मन कर दिया और उसे आत्महत्या घोषित कर दिया। हाल ही का हाथरस बलात्कार केस उल्लेखनीय है, जिसमें दलित युवती से चार उच्चजाति के लोगों ने बलात्कार किया और इतनी बरहमी से पिता की दो सप्ताह तक वह जीवन और मृत्यु के मध्य लड़ती रही। अंत में उसकी मृत्यु के पश्चात उसके शव को बिना उसके परिवार ही पुलिस प्रशासन ने आधी रात के पश्चात~ चोरी से जल दिया। इन सभी घटनाओं से स्पष्ट दिखाई देता है कि कभी–कभी राजनीतिक तत्वों द्वारा तो कभी–कभी प्रशासनिक व्यवस्था द्वारा दलितों के ऊपर सामाजिक अपराध किया जा रहा है। जिसको अब वैधानिक क्रिया से रोकना अब बहुत अधिक कठिन है। ऐसा बढ़ता ही जा रहा है, यदि इंडियाटाइम्स की माने तो लॉकडाउन में जातिगत अपराध या जातिगत हिंसा 5 गुना तक बढ़ गई है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो की रिपोर्ट को माने तो हर 15 मिनट में दलितों के विरुद्ध एक जुर्म होता है, हर दिन 6 दलित औरतों का बलात्कार किया जाता है, 56000 दलित बच्चे झुग्गियों में कुपोषण से मर जाते हैं और प्रत्येक वर्ष 1000 दलितों को जातिगत हिंसा में मार दिया जाता है।

यदि भविष्य में ऐसे सामाजिक अपराध की घटनाएं ना रोकी गईं या बढ़ती गई और प्रशासन व शासन अपराधी तत्वों का ऐसे ही समर्थन करते गया तो आगे एक बहुत बड़ा सामाजिक विस्फोट के होने की स्पष्ट आशा प्रदर्शित होती है, जिससे पूरे समाज की सुख शांति भंग हो जाएगी। यदि प्रशासन और शासन दलितों के गुस्से से बचना चाहता है तो उसे निष्पक्ष होना चाहिए और आरोपियों के विरुद्ध गंभीर कदम उठाने चाहिए।

♦♦♦♦♦

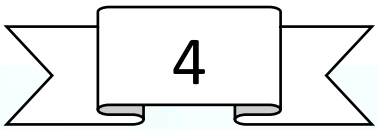

सामाजिक उत्थान की चुनावी रणनीतिः उत्तर प्रदेश में अन्य पिछड़ा वर्ग के राजनीतिक उत्थान का अवलोकन

निशांत यादव

सहायक प्राध्यापक, सत्यवती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारत में दशकों से यह माना जाता था कि अच्छी राजनीतिक सफलता के लिए अच्छे अर्थशास्त्रीय निर्णयों की आवश्यकता नहीं होती है। दूसरे शब्दों में कहें तो, आर्थिक निर्णयों ने उत्तम आर्थिक प्रदर्शन से दलीय व्यवस्था में कोई प्रत्यक्ष चुनावी पुरस्कार प्राप्त नहीं किया है। एक आकलन के अनुसार, 2000 के दशक में यह अवधारणा बदलनी शुरू हुई, जैसे कि आर्थिक और चुनावी प्रदर्शन परस्पर मजबूत होते गए। भारतीय राजनीति में ऐसा पथमतया देखा गया कि मतदाताओं नें अकुशल आर्थिक नीति एवं कमजोर आर्थिक विकास वाली सरकार से असंतुष्ट होकर उसे दंडित करते हुए चुनावी राजनीति में अस्वीकार किया और इसके विपरीत आर्थिक विकास में अच्छा प्रदर्शन करने वालों दलों को पुरस्कृत करते हुए सरकार बनाने का अवसर प्रदान किया।

2019 के चुनावों के परिणाम इन आर्थिक कारकों के लिए पुनः एक चुनौती प्रस्तुत है क्योंकि भाजपा नें यह चुनाव जीडीपी, विकास, रोजगार, और कृषि कल्याण जैसे मानक आर्थिक संकेतकों को सुलझाए बिना लड़ा और पूर्ण बहुमत प्राप्त किया। वास्तव में यह स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था के मुद्द 2014 की चुनावी दौड़ के विभिन्न अर्थो में केंद्र बिंदु में थे, परंतु 2019 के चुनाव में इसकी भूमिका कम दिखाई देती है। उपर्युक्त तथ्यों के अंर्तगत विभिन्न शोध संस्थानों और समाचार एजेंसियों के आँकड़े यह बताते हैं कि, छह सप्ताह क चुनावी अभियान के दौरान आर्थिक मुद्दों की प्रमुखता वास्तव में घट गई थी।

आर्थिक मुद्दों से परे इस प्रकार हमें यह दृष्टिगत होता है कि, जाति भारतीय राजनीति का स्याह पक्ष है जो भारतीय चुनावी राजनीति में प्रमुख निर्धारक के तौर पर बनी रहती है। किन्तु कुछ जातियों को जातिगत राजनीति से भिन्न पाया जाता है जिनके लिए विकास की राजनीति केंद्रीय मुद्दा बन गई है। क्षेत्रीय दलों के हार का मुख्य कारण यह है कि अधिकांश क्षेत्रीय दलों पर एक ही परिवार का अधिग्रहण है तथा राजनीतिक पद और लाभ का वितरण परिवार के बाहर नहीं होता है अथवा एक ही जाति के भीतर लाभ का वितरण होता रहा। जिन्होंने विकास

के एजेंडे से ओबीसी के बड़े जनसमूह को प्रथक रखते हुए कुछ चिन्हित लोगों के विकास को गति दी है। बसपा की राजनीति में भी इसी प्रकार की चीजों को देखा जा सकता है। जो दल ब्राह्मणवादी संस्कृति के विरूध खड़ी थी बाद में उसी से जुड़ गई, उदाहरण के लिए बसपा सुप्रीमो दलों के प्रतीक हाथी को एक सार्वजनिक सभा में गणेश के साथ जोड़ती हैं, जिससे पता चलता है कि दल इस समय अपने मूल सिद्धांतों से हट गई है।

भारत की संस्थापक दृष्टि आंतरिक रूप से विविधतापूर्ण और समतावादी है। यद्यपि समतावादी समाज की अवधारणा स्वप्नलोकीय प्रतीत होती है तथापि समतावाद, समानता के यथार्थवादी विचारों पर आधारित है। बौद्ध दर्शन के अनुसार मनुष्य एक दूसरे के सापेक्ष समानता के आधार पर पर पूरी तरह से समान है और समानता का यह विचार खंडित और अनुभागीय नहीं अपितु पूर्ण और सार्वभौमिक है। प्रत्येक मौजूदा समाज अतीत या वर्तमान में जीवन के हर क्षेत्र में किसी न किसी प्रकार की असमानता से गुजरा है और इस असमानता का चरित्र स्वाभाविक और कार्यात्मक है। स्वाभाविक रूप से, सभी मानव एक समान पैदा होते हैं लेकिन जाति, रंग, नस्ल, पंथ आदि के आधार पर भेदभाव और असमानता की प्रथाओं का सामाजिक रूप से निर्माण किया जाता है और इसे दुनिया भर में स्वीकार किया गया जाता रहा है। राजनीतिक वैज्ञानिकों और डेविस मूर जैसे दार्शनिक के अनुसार सामाजिक संरचना मं शक्तिशाली व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति अर्थात् गैर–शक्तिशाली की तुलना में बेहतर स्थान मिलता है वहीं मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार मौजूदा आर्थिक असमानता के कारण ही सामाजिक असमानता विद्यमान है और 'हैव्स' ने 'हैव्स नॉट' के सापेक्ष निर्णय लेने की शक्ति प्राप्त कर ली है। यहाँ आंद्रे बेते का तर्क उल्लेखनीय है कि, भारत में असमानता पदानुक्रमित प्रणाली से निकटता से संबंधित है जो समूहों और श्रेणियों के विभाजन पर आधारित है।

इसलिए भारतीय समाज की वास्तविकता के अंतगत जाति का होना भी भारतीय सामाजिक व्यवस्था में असमानता पैदा करने का मुख्य कारण बनता है। भारतीय राजनीति में जाति केंद्रीय तत्व है और जाति संरचना में पदानुक्रम की उत्पत्ति 'शुद्धता के सिद्धांत' से उत्पन्न होती है जिसके चारों ओर भेदभाव और अभाव की अवधारणाएँ केंद्रित होती हैं। जातियों में श्रेष्ठता और हीनता की धारणा के परिणामस्वरूप पदानुक्रम में निचले छोर पर स्थित जातियों के साथ अन्याय, असमानता के कारण पिछड़ापन पैदा हो गया। जाति पर आधारित भेदभाव और असमानता व्यक्ति या समाज केंद्रित हो सकती है जो समाज के विकास को सीधे प्रभावित करती है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था को मोटे तौर पर तीन जातिगत समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है, अर्थात् उच्च जातियाँ, पिछड़ी जातियाँ और अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियाँ।

पिछड़े वर्ग में कौन शामिल हैं? का सवाल समकालीन समय में ही वाद–विवाद का विषय नहीं रहा है, अपितु स्वतंत्रता से पहल से ही यह चर्चा में रहा है। पथमतया पिछड़ा वर्ग शब्द का प्रयोग मद्रास प्रेसीडेंसी में किया गया था। सामान्य तौर पर संवैधानिक व्याख्या के अनुसार जो समुदाय शिक्षा और सामाजिक मामले में पिछड़े हुए हैं, उन्हें पिछड़े वर्गों के बैनर तले रखा जाएगा। इन समुदायों में मुख्य रूप से छोटे कृषक, कारीगर, मजदूर, नाई, बढ़ई आदि सम्मिलित होते हैं, जिन्हें एक वाक्य में कहा जा सकता है कि, सेवा प्रदान करने वाले समुदाय। पिछड़ी जातियों की स्थिति को सवर्णों और अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के मध्य कहीं रखा जा सकता है। अन्य पिछड़ा वर्ग को उतने सामाजिक लांछनों का सामना नहीं करना पड़ा जितना अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों को सैकड़ों वर्षों तक झेलना पड़ा है। इसलिए जातिगत संरचना और पिछड़ेपन के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सभी के लिए तो नहीं किन्तु बहुसंख्यक पिछड़ों के लिए राजनीतिक विषयों में उनकी भागीदारी और प्रतिनिधित्व संदिग्ध रही है।

जातिगत राजनीति में प्रायः यह देखने को मिलता है कि चुनावी राजनीति का यह पहलू नकारात्मक दृष्टिकोण से न देखा जाय इसलिए इस समूची जातीय राजनीति को सामाजिक उत्थान की राजनीति का नाम दे दिया जाता है। इस जातीय राजनीति या यूँ कहें कि सामाजिक उत्थान की राजनीति में अन्य पिछड़ा वर्ग की राजनीति नें भारतीय चुनावी राजनीति को एक नई दशा और दिशा प्रदान की है। मंडल आयोग की अनुशंसा ने भारत में आरक्षण और पहचान की राजनीति को गति प्रदान की, इससे भारतीय राजनीति में एक नया सामाजिक एवं राजनैतिक विमर्श तथा गठबंधन तैयार हुआ। जिसने मुख्यतः भारत में मध्यम वर्ग की जातियों के उभार को सुनिश्चित किया। मंडल आयोग की अनुशंसा को लागू करने के एक दशक बाद तक अन्य पिछड़ा वर्ग को नौकरियों और शिक्षण संस्थानों में आरक्षण तथा अन्य लाभ वितरित करने की नीतियाँ बनाई जाती रही हैं। मंडल आयोग के आगमन नें भारतीय राजनीति में गैर–कांग्रेसवाद को राज्यों के स्तर पर ताकत प्रदान की जिससे अन्य पिछड़ा वर्ग के समूहों के प्रतिनिधित्व की राजनीति करने वाले राजनीतिक दल राज्यों की सत्ता पर काबिज हो गए। उत्तर प्रदेश में भाजपा की राजनीतिक सत्ता का निर्माण मंडल आयोग की अनुशंसा लागू होने के पश्चात् बने राजनीतिक वर्ग के दो दशक तक लाभान्वित होने के उत्तरार्ध की कहानी है। इसी की निरंतरता में नरेंद्र मोदी की नेतृत्व वाली केंद्र सरकार नें 'लाभ के अधिक समान बँटवारे' को सुनियोजित करने के लिए एक ओबीसी उप–वर्गीकरण समिति का गठन किया है। सरकार के इस कदम से देश में जाति और आरक्षण के बारे में विचार–विमर्श फिर से शुरू हो गया है।

यह कदम सत्तारूढ़ भाजपा की सामाजिक और राजनीतिक रणनीति से प्रेरित है, जो मुख्य रूप से उत्तरी भारत में ओबीसी जातियों के मध्य अपने समर्थन को मजबूत करने के लिए तत्पर है।

भाजपा इस रणनीति द्वारा बहुमत की पूर्ण संख्या व मतदान में मतों का महत्वपूर्ण हिस्सा प्राप्त करके प्रमुख राजनीतिक शक्ति के रूप में अपनो स्थिति को मजबूत कर रही है। वहीं ओबीसी और दलित मतदाताओं के क्षेत्रीय दलों के प्रति असंतोष ने उन्हें भाजपा के राजनीति एजेण्डे 'सबका साथ सबका विकास' की ओर बढ़ने के लिए अग्रसर किया और यही कारण है कि भाजपा उपर्युक्त समुदायों का समर्थन अपनी तरफ खींचने में सफल हो गई और लोकसभा एवं राज्य विधानसभा में निरंतर विजय प्राप्त कर रही है।

वैश्विक अध्ययन केंद्र, दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा उत्तर प्रदेश के चुनाव परिणाम से सम्बन्धित विभिन्न आयामों को जानने के लिए आयोजित किए गए सर्वे से प्राप्त आँकड़े यह दर्शाते हैं कि भाजपा को निम्न पिछड़ा वर्ग के मध्य मजबूत समर्थन प्राप्त है। इन समूहों को लाभ पहुंचाने वाली कोई भी रणनीति भाजपा को मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश में अपने समर्थन के आधार को और मजबूत करने में सहायता कर सकती है और सपा एवं बसपा की मजबूत राजनीतिक पकड़ वाले इस राज्य में बहुमत की पूर्ण संख्या के विषय में राजनीतिक प्रगति को बढ़ावा देगी, किन्तु इस प्रकार के कदम अन्य पिछड़ा वर्ग की उच्च जातियों और शक्तिशाली मध्यम जातियों से प्रतिक्रिया को भी आमंत्रित कर सकती हैं जो वर्तमान में अपनी ओबीसी की स्थिति को बनाए रखने के लिए प्रयासरत हैं।

संदर्भ ग्रंथ

चौधरी, सुनील कुमार एंड योगेश अटल (2015). राइट टर्न इंडियन पॉलिटीरू मोदी ऑन बीजेपी'ज चौरीऑट. नई दिल्ली हर–आनंद पब्लिकेशंस

दुबे, अभय कुमार (2005). लोकतंत्र के सात अध्याय. नयी दिल्ली वाणी प्रकाशन

सेठ, धीरूभाई (2009). सत्ता और समाज. प्रस्तुति एवं सम्पादन अभय कुमार दुबे. नयी दिल्ली वाणी प्रकाशन

Sharma, Ruchir (2019)- Democracy on the Road: A 25&Year Journey Through India, New Delhi: Penguin

Vaishnav, Milan and Reedy Swanson (2015) Does Good Economics Mean Good Politics in India\Evidence from Indian States," India Review 14, no- 3 (September) pp-279–311

♦♦♦♦♦

5

सामाजिक उत्थान एवं संवैधानिक प्रावधानः नीति बनाम राजनीति

माधुरी कुमारी

शोधार्थी, इंदिरा गांधी अंतराष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

भारत में सामाजिक उत्थान समाज सुधार के द्वारा अपनाया गया और यह नवीन परंपरा नहीं है अपितु वर्षों से अपनाया जा रहा है। स्वतंत्रता पश्चात् इसी प्रक्रिया को नीतियों द्वारा संवैधानिक समावेश करके इसे कार्यान्वित किया गया यह लेख इन्हीं से प्रेरित कथ्य और तथ्यों को दर्शाता है जिसे समय–समय पर चुनौती दी गई।

भारत में सामाजिक सुधार का इतिहास भारतीय पुनर्जागरण के काल से माना जा सकता है जिसमें विभिन्न विद्वानों ने पूर्ण प्रयास कर सामाजिक प्रथाओं का विरोध कर उसमें सुधार किया यद्यपि उस समय संवैधानिक आयाम तो नहीं था परंतु प्रचलित मान्यताओं को समाप्त करने के लिए ब्रिटिश शासकों और उनके द्वारा संचालित नियमों और कानूनों के सहारा लेकर उसे समाप्त किया गया जिसका विरोध भी हुआ इस लेख का मुख्य केंद्र बिंदु भी यही है कि किस प्रकार समय समय पर सामाजिक उत्थान के लिए यह नवीन कदम उठाए गए जिसका प्रारंभ स्वतंत्रता के कुछ वर्षों पश्चात ही हुआ ।

भारत की पहली संसद संविधान सभा को कहा गया जिसका अस्तित्व और अस्मिता नीति नियमन के आधार पर टिकी हुई है। लोकतान्त्रिक समाज में नीति नियमन और उसका लोकतांत्रिक प्रकृति का होना अभिन्न है जिसका उद्देश्य समाज में विकास को लाना है और समाज का सुचारु रुप से चलाना भी है। इस प्रकार लोकतांत्रिक व्यवस्था का उद्देश्य नीति नियमन से सामाजिक परिदृश्य को सुधारना और सुचारू रूप से चलाना है इसी के अंतर्गत संसद का मुख्य कृत्य नीति नियमन तय हुआ।

1947 से 1970 का काल

सामाजिक परिवेश में परिवर्तन के कई कारण या कारक रहे हैं भारत एक उत्तर औपनिवेशिक राज्य के कारण कई समस्याओं से ग्रसित था जिसका निवारण संवैधानिक सहारा लेकर किया गया। उत्तर औपनिवेशिक काल की देन जमींदारी व्यवस्था थी, जो कृषक आंदोलन के रूप में परिवर्तित हुई, यही नहीं इस का प्रतिबिंब कई चीजों में परिलक्षित होता है। यह उत्तर औपनिवेशिक समस्याएं ही रही हैं, जिसके कारण स्वतंत्रता पश्चात लैंड सीलिंग का अभियान

चलाया गया। स्वतंत्रता से पहले भूमि कर कई प्रकार के थे, जिससे जमींदारी प्रथा को बढ़ावा मिला। स्वतंत्रता पश्चात् यह व्यवस्था न्याय संगत नहीं थी। जिसे सुधारने के लिए भूमि सुधार कानून का सहारा लिया गया और आंदोलन चलाया गया, उसी के अंतर्गत नौवीं अनुसूची को 1951 में प्रथम संविधान संशोधन के अंतर्गत जोड़ा गया।

ना मात्र कानूनी दृष्टिकोण से अपितु सामाजिक दृष्टिकोण से भी इसे सुचारू रूप से चलाया गया परंतु इसके प्रति अत्यधिक विमुखता देखने को मिली। सामाजिक स्तर पर भी और संवैधानिक तौर पर भी सामाजिक स्तर पर इसका विरोध कृषक आंदोलन के रूप में हुआ। पश्चिम बंगाल में भूमि सुधार ठीक तरह से ना हाने के कारण वहां के निवासियों के मन में असंतुष्टता उत्पन्न हुई जिसके कारण कृषक आंदोलन सान्याल के नेतृत्व में चलाया गया जिसे नक्सलबाड़ी आंदोलन के नाम से भी जाना जाता है।

वहीं दूसरी तरफ नौवीं अनुसूची को जोड़कर भूमि सुधार करने के क्रम में इस संसदीय कदम को और संवैधानिक मानकर याचिका दायर की गई, जो ना केवल शंकरी प्रसाद केस में देखा गया अपितु गोलकनाथ केस और अंततः केसवानंद भारती केस में भी देखा गया। इन सभी में भूमि को मौलिक अधिकार बनाकर हस्तक्षेप याचिका बनाया गया जिसमें अंततः केसवानंद भारती कस में कहा गया कि संसद किसी भी भाग में परिवर्तन कर सकती है, परंतु मौलिक भाग में परिवर्तन नहीं कर सकती ।

यह समय क्रम इन्हीं सब बिंदुओं के इर्द–गिर्द दिखाई देता है, जहां सामाजिक परिवर्तन को लेकर संवैधानिक चुनौतियों का सामना किया गया।

1970 से 1990 का काल

इस दशक 1970 के उपरांत की राजनीतिक दृष्टिकोण सामाजिक दृष्टिकोण के अनुरूप ढलते रहे। हरित क्रांति में यह तथ्य स्पष्ट हो गया था कि निर्धनता अपने पैर पसार रहा है, जिसके अंतर्गत राजनीति और राजनीतिक पार्टियों में फूट पड़ चुकी थी। फूट पड़ चुके कांग्रेस पार्टी अपनी सतह पर इस परिप्रेक्ष्य को दिखाना चाहती थी यद्यपि स्थिति ध्यान देने योग्य यह थी कि उस समय की आर्थिक स्थिति की भी यही मांग थी। सामाजिक परिवेश में भूख से निजात प्रथम उद्देश्य बन चुका था। राजनीतिक चेहरों का और उस समय की अत्यधिक प्रख्यात वक्तव्य निर्धनता हटाओ एक सर्वप्रथम विषय बन चुका था। जिसे सुदृढ़ इंदिरा गांधी ने अपने भाषणों में प्रयोग किया और प्रचार भी किया, वही इससे पहले की इन नीतियों का उपयोग जनता तक पहुंचता उनके मुख्य प्रतिद्वंदी राजनारायण द्वारा उनके नेतृत्व को चुनौती दे दी गई, जिसके फलस्वरूप आपातकाल जैसी चुनौती देश को मिली और इससे सम्पूर्ण राष्ट्र को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

यहां पर यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि ना मात्र संसद सरकार नीति बनाम राजनीति के मध्य आती है अपितु न्यायपालिका भी संसद सरकार के साथ को परिपूर्ण करती है अर्थात राजनीति का समावेश किसी भी नीति के विरुद्ध न्यायपालिका में याचिका दाखिल करके भी होता है, जो किसी नीति को ना मात्र अपूर्ण दिखाता है अपितु उसके निर्माता के मंशा पर भी एक प्रश्नचिन्ह लगाता है ।

अभी तक के विचार–विमर्श से हमारा यह कथन उचित ठहरता है। इस कथन का अगला उदाहरण विभिन्न राज्यों के जल विवाद को लेकर देखा जा सकता है। अनुच्छेद 262 के अनुसार, लंबित जल विवाद का निपटारा केंद्र सरकार के हस्तक्षेप से निपटाना आवश्यक है। परंतु मुद्दे कई वर्ष तक लंबित रहे उदाहरण स्वरूप कावेरी जल विवाद और कुछ मुद्दों ने पर्यावरण का हवाला लकर उसका अंतरराष्ट्रीय करण किया। जिससे नीति का फायदा एक जायज पक्ष को मिलने में असफल रहा।

1990 से लेकर 2010

1990 का दशक आंतरिक नीतियों के परिवर्तन पर केंद्रित रहा। इससे सामाजिक परिवर्तन और उत्थान हुआ। अपितु इस पर हुई राजनीति के उलट इसका समावेश भी हुआ। एक अन्य उदाहरण भाषा की समस्या है। भारत सनातन रूप से विभिन्न भाषाओं का देश रहा है, यद्यपि सभी को संवैधानिक दर्जा दे पाना कठिन है। परंतु इस समस्या का समाधान भी किया गया। इस समस्या का आगाज राज्यों के पुनर्गठन से शुरू माना जाता है और अंततः सामाजिक हित को ध्यान में रखते हुए और उसको बनाए रखने के लिए संवैधानिक संशोधन द्वारा 2003 में बोडो डोगरी मैथिली को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ ।

इस प्रकार इस समय काल में ना केवल अंतरराष्ट्रीय मुद्दों को ध्यान में रखते हुए, आंतरिक नीतियों में परिवर्तन देखा गया। उस पर राजनीति देखी गई अपितु यह समय क्षेत्रीय समस्याओं का भी बोलबाला रहा, जो यह दिखाता है कि कैसे और किस तरह विकास की गति असंतुलित रही और इसके अंतर्गत विभिन्न क्षेत्रीय समस्याओं को देखा गया जिसमें हमने भाषा की समस्या को महत्वपूर्ण मानकर अस्मिता को बरकरार रखने के अंतर्गत देखा कि कैसे उसको संवैधानिक दर्जा प्राप्त कर विभिन्न वर्गों को संतुष्ट किया गया।

2010 से 2022 का काल

समय के साथ नीति नियमन और पुराने नीतियों में परिवर्तन ही समय को और उससे संबंधित नीति को फलदायक माना जाता है, ऐसे कई उदाहरण इन दशकों में देखने को मिले उदाहरण स्वरूप नोटबंदी, जीएसटी 101 संवैधानिक संशोधन 2016, 103 संवैधानिक संशोधन में

ईडब्ल्यूएस कोटा जिसमें 10ः आरक्षण श्रवण तबके को देने की बात की गई। यह सभी मुद्दे नवीनता को दर्शाती है और बताती है कि कैसे समय के साथ–साथ नीतियों के निर्माण आवश्यक है।

निष्कर्ष

उपरोक्त वक्तव्य से यह पता लगता है कि नीतियों के गतिशीलता को अवरुद्ध करने का सबसे बड़ा कारक उस पर हो रही राजनीति है जो उसके प्रभावी होने में अवरोध पैदा करती है। उपरोक्त कथन से यह भी प्रतीत होता है कि इस नीति बनाम राजनीति के क्रम में ना सिर्फ सरकार, नौकरशाही आती है बल्कि न्यायपालिका भी इसमें अपनी भूमिका का समावेश करती है जिसका कारण राजनीति है एक अन्य पक्ष सामने निकल कर आता है कि नीति हमेशा ही संदर्भ पर आश्रित होती है और समय के अनुसार ही उसके फायदे नुकसान का मूल्यांकन भी किया जाना चाहिए परंतु ऐसा कम ही देखने को मिलता है और नीति बनाम राजनीति का बोलबाला भारतीय राजनीति में सदैव ही प्रासंगिक बना रहेगा।

संदर्भ

चौटर्जी, पार्था, 1997,. थीम्स इन पॉलिटिक्स स्टेट एंड पॉलिटिक्स इंडिया. ऑक्सफोर्ड इंडिया

चंदोक, नीरा, 2009 ,.कंटेंपरेरी इंडिया रूइकोनॉमि, सोसाइटी ,पॉलिटिक्स .पीयरसन

बंधोपाध्याय, शेखर, 2015,. पलासी से विभाजन तक और उसके बाद. ओरियंट ब्लैकस्वान

बासु, डी .डी , 2018,. इंट्रोडक्शन टू द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ इंडिया. लेक्सिनेक्सिस

बक्शी, पीएम, 2018,. द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ इंडिया. यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग

चौधरी, बीवी., जॉर्ज ,एसबी., जॉर्ज ,जेवी., 2008, भारतीय शासन एवं राजनीति. श्री महावीर बुक डिपो

माथुर, कुलदीप., 2013,. पब्लिक पॉलिसी एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया हाउ इंस्टीट्यूशंस मैटर ऑक्सफोर्ड

सरकार, सुमित., 2019,. आधुनिक भारत का इतिहास. राजकमल प्रकाशन

♦♦♦♦♦

सी जी एस

वैश्विक अध्ययन केंद्र

अकादमिक अनुसंधान केंद्र भवन

गुरु तेग बहादुर मार्ग

दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली– 110007

www.cgs.du.ac.in @cgsofficialdu office@cgs.du.ac.in +91-11-27666281